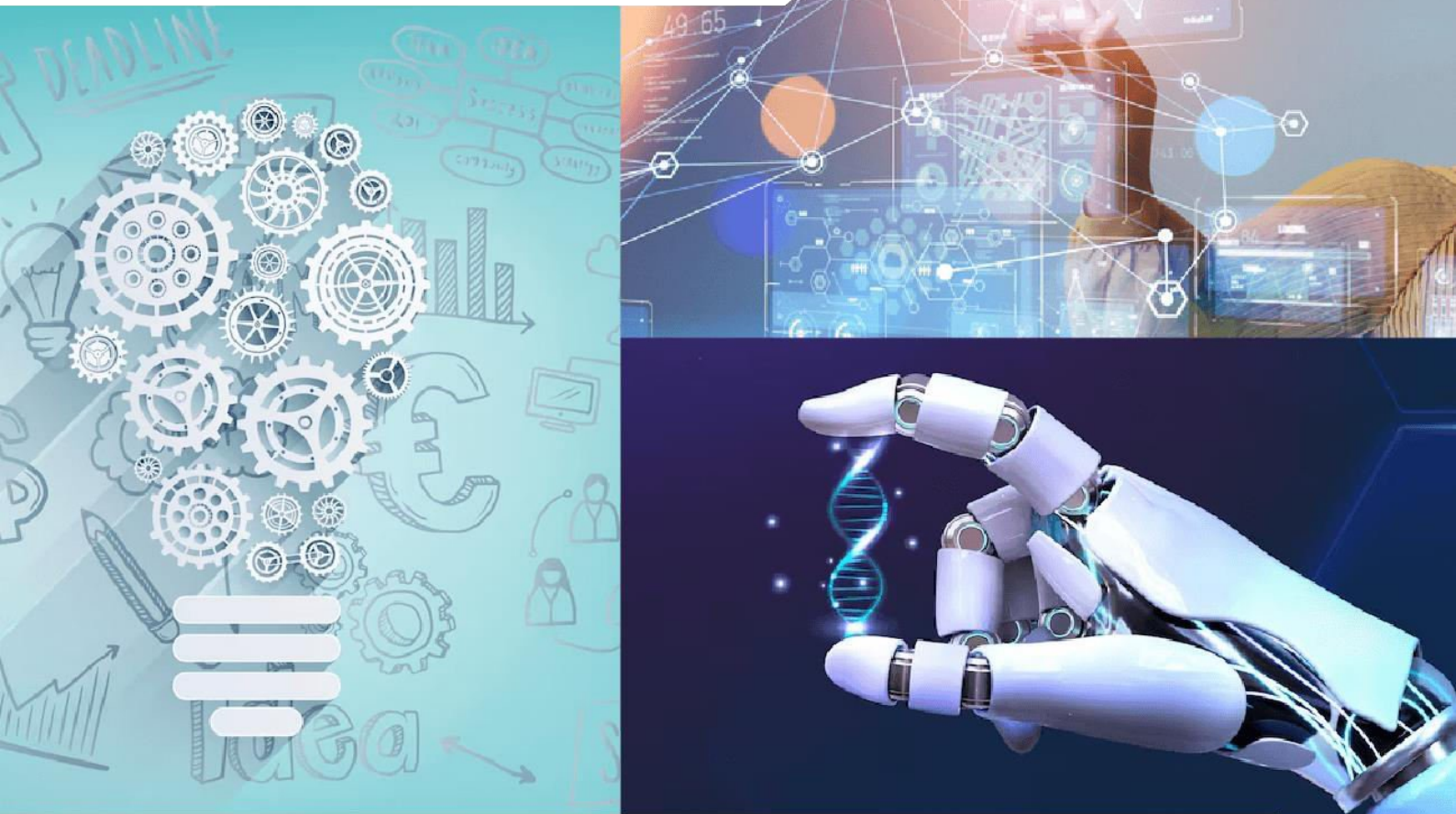




International Journal of Advanced Research in Education and Technology (IJARETY)

Volume 13, Issue 2, March - April 2026

Impact Factor: 8.152



INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA



जाति-प्रथा, छुआछूत और पाखण्ड का विरोध: स्वामी विवेकानन्द के विचार

निर्मला

सहायक प्राध्यापिका (संस्कृत), राजकीय महाविद्यालय कृष्ण नगर, महेंद्रगढ़, हरियाणा, भारत

सार: उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज सामाजिक विषमता, जातिगत कठोरता, अस्पृश्यता और धार्मिक पाखण्ड से ग्रस्त था। इस युग में स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त के सार्वभौमिक सिद्धान्तों के आधार पर मानव-समता, आत्म-दिव्यता और सेवा-धर्म का प्रतिपादन करते हुए सामाजिक पुनर्जागरण का आह्वान किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि प्रत्येक आत्मा संभावित रूप से दिव्य है और समाज की समस्त असमानताएँ अज्ञानजन्य हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में जाति-प्रथा, छुआछूत और पाखण्ड के संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचारों का दार्शनिक तथा सामाजिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन उनके प्रमुख ग्रंथों—*सम्पूर्ण कृतियाँ, कोलंबो से अल्मोड़ा तक के भाषण, ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग, प्राच्य और पाश्चात्य*—पर आधारित है।

I. भूमिका

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेदान्त है, जो समस्त सृष्टि में एकत्व का दर्शन कराता है। उपनिषदों में उद्घोषित है—

“अहं ब्रह्मास्मि”

“तत्त्वमसि।”

“सर्वं खल्विदं ब्रह्म।”

इन महावाक्यों का आशय यह है कि प्रत्येक जीव में वही परम सत्य विद्यमान है। परन्तु सामाजिक इतिहास में यह आध्यात्मिक सत्य व्यवहारिक जीवन में पूर्णतः परिलक्षित नहीं हो सका। वर्ण-व्यवस्था, जो मूलतः सामाजिक संगठन का साधन थी, जन्म-आधारित जाति-प्रथा में परिवर्तित हो गई। छुआछूत ने समाज के एक बड़े वर्ग को मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया। धर्म कर्मकाण्ड और बाह्याडम्बर तक सीमित हो गया।

किन्तु इतिहास के क्रम में भारतीय समाज की संरचना में अनेक परिवर्तन हुए। वर्ण-व्यवस्था, जो प्रारम्भ में गुण और कर्म पर आधारित सामाजिक संगठन की प्रणाली थी, कालान्तर में जन्म-आधारित जाति-प्रथा में परिवर्तित हो गई। इससे सामाजिक गतिशीलता समाप्त हो गई और ऊँच-नीच का स्थायी विभाजन स्थापित हो गया। परिणामस्वरूप समाज का एक बड़ा वर्ग शिक्षा, संपत्ति और धार्मिक अधिकारों से वंचित हो गया। छुआछूत जैसी अमानवीय प्रथा ने सामाजिक एकता को और भी दुर्बल कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत राजनीतिक पराधीनता के साथ-साथ सामाजिक और मानसिक दासता से भी ग्रस्त था। जातिगत कठोरता ने राष्ट्रीय एकता को खंडित कर दिया था। धर्म का स्वरूप भी अनेक स्थानों पर कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर और रूढ़ परम्पराओं तक सीमित हो गया था। अंधविश्वासों और पाखण्डों ने धार्मिक चेतना को विकृत कर दिया था। ऐसी परिस्थिति में भारतीय समाज को एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी, जो उसे उसके मूल आध्यात्मिक आदर्शों की ओर पुनः उन्मुख कर सके। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द का उदय हुआ। उन्होंने वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त को केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक परिवर्तन का आधार बनाया। उनका स्पष्ट मत था कि यदि प्रत्येक आत्मा दिव्य है, तो किसी भी प्रकार का जातिगत भेदभाव आध्यात्मिक अज्ञान है [1]। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारत की उन्नति तब तक संभव नहीं जब तक समाज के निम्न और वंचित वर्गों का उत्थान नहीं किया जाता।

विवेकानन्द का दृष्टिकोण केवल आलोचनात्मक नहीं था, बल्कि रचनात्मक भी था। उन्होंने जाति-प्रथा की ऐतिहासिक उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उसके विकृत रूप की आलोचना की। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था के मूल सिद्धान्त—

“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।”

—की पुनर्व्याख्या करते हुए कहा कि यह जन्म-आधारित नहीं, बल्कि गुण और कर्म पर आधारित व्यवस्था थी [2]।

छुआछूत के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट और प्रखर था। उन्होंने इसे “राष्ट्रीय पाप” और “मानवता के विरुद्ध अपराध” के रूप में देखा। उनका कथन था कि यदि हम किसी मनुष्य को छूने से अपवित्र हो जाते हैं, तो यह धर्म नहीं, अज्ञान और संकीर्णता है

[3]। उन्होंने “दरिद्र नारायण” की संकल्पना के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि गरीब और पीड़ित मानव की सेवा ही सच्ची पूजा है [4]।

धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्ड और अंधविश्वासों की भी उन्होंने तीखी आलोचना की। उनके अनुसार धर्म का सार आत्मानुभूति और नैतिक आचरण है, न कि बाह्य कर्मकाण्ड [5]। उपनिषदों के इस सिद्धान्त—

“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः।”

—को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि आत्मा का बोध केवल प्रवचन या शास्त्रज्ञान से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव से होता है। इस प्रकार, स्वामी विवेकानन्द का चिंतन जाति-प्रथा, छुआछूत और पाखण्ड के विरुद्ध एक समन्वित आध्यात्मिक-सामाजिक आंदोलन का रूप धारण करता है। उनका लक्ष्य केवल सामाजिक सुधार नहीं था, बल्कि मनुष्य के भीतर निहित दिव्यता का जागरण था। उन्होंने आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वय के माध्यम से भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की।

II. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : उन्नीसवीं शताब्दी का सामाजिक परिदृश्य

अंग्रेजी शासन के समय भारतीय समाज दोहरी दासता से ग्रस्त था—राजनीतिक और मानसिक। जाति-प्रथा की कठोरता ने सामाजिक एकता को कमजोर कर दिया था। निम्न वर्ग शिक्षा, संपत्ति और धार्मिक अधिकारों से वंचित था। स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषणों में स्पष्ट कहा कि भारत की पतनावस्था का प्रमुख कारण सामाजिक विभाजन है। उन्होंने अनुभव किया कि जब तक समाज के निम्न वर्गों का उत्थान नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का पुनर्निर्माण संभव नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज गहरे सामाजिक द्वंद्व और संक्रमण से गुजर रहा था, जहाँ एक ओर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के प्रभाव से आधुनिक शिक्षा, मुद्रण-यंत्र, समाचार-पत्र और पश्चिमी चिंतनधाराओं का प्रसार हो रहा था, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक सामाजिक संरचना जाति-आधारित कठोर विभाजन, छुआछूत, स्त्री-असमानता और धार्मिक रूढ़ियों से ग्रस्त थी। जन्म-आधारित जाति-प्रथा ने समाज को स्थायी ऊँच-नीच में विभाजित कर दिया था, जिसके कारण तथाकथित निम्न जातियों को शिक्षा, मंदिर-प्रवेश, सार्वजनिक संसाधनों और सामाजिक सम्मान से वंचित रखा जाता था। छुआछूत केवल धार्मिक मान्यता नहीं, बल्कि सामाजिक बहिष्कार की संगठित व्यवस्था बन चुकी थी। धर्म का स्वरूप भी अनेक स्थानों पर आध्यात्मिक अनुभूति के स्थान पर कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर और पुरोहितवादी नियंत्रण तक सीमित हो गया था, जबकि वेदांत का मूल संदेश— **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** तथा **“अहं ब्रह्मास्मि”**—सामाजिक व्यवहार में परिलक्षित नहीं हो रहा था। इसी समय विभिन्न सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय हुआ, जिन्होंने शिक्षा, समानता और तर्कशीलता पर बल दिया। इसी ऐतिहासिक संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द का चिंतन प्रकट हुआ, जिसने अद्वैत वेदान्त के आधार पर सामाजिक समता, मानव-गरिमा और आध्यात्मिक एकता का पुनर्स्थापन करने का प्रयास किया और जाति-भेद, छुआछूत तथा पाखण्ड के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान किया।

III. सैद्धान्तिक आधार : वेदान्त और मानव-समता

वेदान्त का मूल सिद्धान्त अद्वैत है, जिसके अनुसार समस्त सृष्टि एक ही परम सत्य—ब्रह्म—की अभिव्यक्ति है और प्रत्येक जीव उसी दिव्य सत्ता का अंश है; अतः मानव-समता वेदान्त का अनिवार्य निष्कर्ष है। उपनिषदों के महावाक्य — **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”**, **“अहं ब्रह्मास्मि”**, तथा **“तत्त्वमसि”** — यह प्रतिपादित करते हैं कि आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं है, इसलिए किसी भी मनुष्य को जाति, जन्म, वर्ण या सामाजिक स्थिति के आधार पर हीन मानना आध्यात्मिक अज्ञान का प्रतीक है। भगवद्गीता का सिद्धान्त — **“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः”** — भी इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि सामाजिक व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, बल्कि गुण और कर्म है; परंतु जब यह व्यवस्था जन्माधारित असमानता में परिवर्तित हो जाती है, तब वह वेदान्त के मूल तत्त्व के विपरीत हो जाती है। इसी अद्वैत दृष्टि को सामाजिक संदर्भ में व्याख्यायित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि प्रत्येक आत्मा संभावित रूप से दिव्य है और समाज की समस्त समस्याओं का समाधान इस दिव्यता की अनुभूति में निहित है; अतः मानव-समता केवल सामाजिक आदर्श नहीं, बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक सत्य है, जिसे व्यवहार में रूपांतरित करना ही सच्चे धर्म का लक्ष्य है।

IV. जाति-प्रथा पर स्वामी विवेकानन्द के विचार

Swami Vivekananda ने जाति-प्रथा का विश्लेषण ऐतिहासिक और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से किया। उनका मत था कि प्राचीन काल की वर्ण-व्यवस्था मूलतः **गुण और कर्म** पर आधारित सामाजिक संगठन की प्रणाली थी, जिसका उद्देश्य समाज में कार्य-विभाजन और सामंजस्य स्थापित करना था; किंतु कालांतर में यह जन्म-आधारित कठोर जाति-प्रथा में परिवर्तित होकर सामाजिक

असमानता और शोषण का साधन बन गई। वे भगवद्गीता के सिद्धान्त — “चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः” — की ओर संकेत करते हुए कहते थे कि जब वर्ण-व्यवस्था को जन्म से जोड़ा गया, तभी उसकी अवनति आरम्भ हुई। विवेकानन्द ने ऊँच-नीच की भावना को राष्ट्रीय दुर्बलता बताया और स्पष्ट कहा कि जो व्यवस्था मनुष्य की आत्मिक गरिमा को आहत करे, वह धर्म नहीं हो सकती। उनके अनुसार प्रत्येक आत्मा संभावित रूप से दिव्य है, इसलिए जातिगत अहंकार और भेदभाव वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त — “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” — के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार उन्होंने जाति-प्रथा के मूल आदर्श और उसके विकृत रूप में भेद करते हुए सामाजिक समता, शिक्षा-प्रसार और आत्मसम्मान के माध्यम से समाज-उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया।

4.1 वर्ण-व्यवस्था का मूल स्वरूप

गीता में कहा गया है—

“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।”

विवेकानन्द ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा कि वर्ण-व्यवस्था गुण और कर्म पर आधारित थी, जन्म पर नहीं।

4.2 जाति-प्रथा का विकृत रूप

उन्होंने कहा कि जब वर्ण जन्म से जुड़ गया और सामाजिक गतिशीलता समाप्त हो गई, तब यह व्यवस्था शोषण का साधन बन गई। उनका मत था कि समाज को संगठित रखने के लिए श्रम-विभाजन आवश्यक है, परंतु यह विभाजन सम्मान और समान अवसर के आधार पर होना चाहिए, न कि जन्म के आधार पर।

4.3 आत्म-दिव्यता और सामाजिक समता

विवेकानन्द का प्रसिद्ध कथन है कि प्रत्येक आत्मा संभावित रूप से दिव्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी मनुष्य को नीचा समझना आध्यात्मिक अज्ञान है।

v. छुआछूत के प्रति विवेकानन्द का दृष्टिकोण

स्वामी विवेकानन्द ने छुआछूत को भारतीय समाज का घोर आध्यात्मिक और नैतिक पतन माना तथा इसे राष्ट्रीय दुर्बलता का प्रमुख कारण बताया। उनका स्पष्ट मत था कि जिस धर्म का आधार अद्वैत वेदान्त है और जो यह उद्घोष करता है — “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” तथा “आत्मवत् सर्वभूतेषु” — वह किसी मनुष्य को स्पर्श-अयोग्य नहीं ठहरा सकता। विवेकानन्द ने कहा कि यदि हम किसी मनुष्य को छूने से स्वयं को अपवित्र मानते हैं, तो यह धर्म नहीं, बल्कि अज्ञान, संकीर्णता और सामाजिक अहंकार का प्रतीक है। उन्होंने तथाकथित ‘निम्न’ वर्गों को समाज की शक्ति बताया और उनके उत्थान को राष्ट्र-निर्माण की अनिवार्य शर्त माना। उनके अनुसार दरिद्र, शोषित और उपेक्षित जनों की सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है, क्योंकि प्रत्येक आत्मा में वही दिव्यता निहित है। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि आध्यात्मिक एकता पर आधारित मानव-गरिमा और समानता के व्यापक आदर्श को स्थापित करने वाला था।

5.1 अस्पृश्यता का खंडन

स्वामी विवेकानन्द ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज का घोर कलंक कहा।

उन्होंने कहा कि यदि कोई मनुष्य ईश्वर का अंश है, तो उसे छूने से अपवित्रता की कल्पना करना अज्ञान है।

5.2 सेवा-धर्म और दरिद्र नारायण

उन्होंने सेवा को सर्वोच्च साधना बताया।

“शिवज्ञाने जीवसेवा।”

इस वाक्य में उनका सम्पूर्ण सामाजिक दर्शन निहित है। उनका मत था कि गरीब, दलित और पीड़ित मानव में ही ईश्वर का साक्षात् निवास है।

उन्होंने “दरिद्र नारायण” शब्द का प्रयोग कर यह संदेश दिया कि समाज के वंचित वर्ग की सेवा ही सच्ची पूजा है।

5.3 शिक्षा का महत्व

विवेकानन्द ने कहा कि शिक्षा के माध्यम से ही निम्न वर्ग आत्मविश्वास प्राप्त कर सकता है। उन्होंने शिक्षा को चरित्र-निर्माण और आत्मबल जागरण का साधन माना।

VI. पाखण्ड और अंधविश्वास का विरोध

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्ड, बाह्याडम्बर और अंधविश्वासों का प्रखर विरोध किया तथा स्पष्ट किया कि सच्चा धर्म तर्क, अनुभव और आत्मानुभूति पर आधारित होना चाहिए, न कि रूढ़ कर्मकाण्डों और पुरोहितवादी नियंत्रण पर। उनका मत था कि जब धर्म केवल बाहरी अनुष्ठानों, चमत्कार-प्रदर्शन या सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन बन जाता है, तब वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति खो देता है। उपनिषदों का वचन — **“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः”** — उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि आत्मा की प्राप्ति केवल वाचिक ज्ञान या दिखावे से नहीं, बल्कि साधना और चरित्र की शुद्धता से होती है। उन्होंने अंधानुकरण के स्थान पर विवेक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आत्मविश्वास को महत्त्व दिया तथा यह प्रतिपादित किया कि धर्म मनुष्य को निर्भीक, स्वतंत्र और नैतिक बनाता है; यदि वह भय, संकीर्णता और सामाजिक शोषण को बढ़ावा देता है, तो वह धर्म नहीं बल्कि पाखण्ड है। इस प्रकार विवेकानन्द का दृष्टिकोण धार्मिक शुद्धि, नैतिक जागरण और तर्कशील आध्यात्मिकता की स्थापना की दिशा में एक सशक्त प्रयास था।

6.1 धर्म का वास्तविक स्वरूप

विवेकानन्द के अनुसार धर्म अनुभव की वस्तु है, न कि केवल शास्त्र-पाठ या कर्मकाण्ड। उपनिषद् में कहा गया है—

“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।”

इसका आशय है कि आत्मा का बोध केवल प्रवचन या शास्त्रज्ञान से नहीं, बल्कि आत्मानुभूति से होता है।

6.2 कर्मकाण्ड की आलोचना

उन्होंने बाह्य आडम्बर और रूढ़ परम्पराओं का विरोध किया। उनका मत था कि जब धर्म सामाजिक नियंत्रण और स्वार्थ का उपकरण बन जाता है, तब वह पाखण्ड में परिवर्तित हो जाता है [6]।

6.3 विवेकपूर्ण आस्था

विवेकानन्द ने तर्क, विज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव के समन्वय की बात कही। उन्होंने कहा कि धर्म को विज्ञान के विरोध में नहीं, बल्कि उसके पूरक के रूप में समझना चाहिए।

VII. सामाजिक पुनर्जागरण में योगदान

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज में आत्मगौरव की भावना जागृत की। उन्होंने युवाओं को आह्वान किया कि वे समाज के वंचित वर्ग की सेवा करें।

उनके विचारों ने स्वतंत्रता आंदोलन के अनेक नेताओं को प्रेरित किया। उनके संदेश में राष्ट्रीय एकता और सामाजिक समरसता का आधार निहित था [7]।

स्वामी विवेकानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय सामाजिक पुनर्जागरण में एक निर्णायक और प्रेरक भूमिका निभाई। उन्होंने वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त — **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** — को व्यावहारिक जीवन से जोड़ते हुए मानव-समता, आत्मसम्मान और सेवा-भाव को सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार बनाया। उनके लिए पुनर्जागरण केवल बौद्धिक जागरण नहीं था, बल्कि चरित्र-निर्माण, शिक्षा-प्रसार और वंचित वर्गों के उत्थान का समन्वित आंदोलन था। उन्होंने दरिद्र और उपेक्षित जनों को “नारायण” की संज्ञा देकर सेवा को साधना का स्वरूप प्रदान किया तथा यह प्रतिपादित किया कि राष्ट्र की शक्ति उसके निम्नतम वर्ग की उन्नति में निहित है। उनके व्याख्यानों और लेखन ने युवाओं में आत्मगौरव, निर्भीकता और कर्मशीलता का संचार किया, जिससे सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय चेतना को नई दिशा मिली। इस प्रकार उनका योगदान आध्यात्मिक पुनरुत्थान, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय जागरण—तीनों स्तरों पर व्यापक और स्थायी प्रभाव छोड़ने वाला सिद्ध हुआ।

VIII. समकालीन प्रासंगिकता

आज के वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और लोकतांत्रिक मूल्यों के युग में भी जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता, धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं; ऐसे में स्वामी विवेकानन्द के विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। उनका अद्वैत वेदान्त पर आधारित मानव-समता का सिद्धान्त — **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** — हमें यह स्मरण कराता है कि प्रत्येक व्यक्ति में समान दिव्यता निहित है, अतः किसी भी प्रकार का जातिगत या सामाजिक भेदभाव नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अस्वीकार्य है।

उन्होंने धर्म को तर्क, अनुभव और सेवा से जोड़ा, जिससे आज के समय में धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक न्याय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सुदृढ़ आधार मिलता है। शिक्षा, आत्मबल और चरित्र-निर्माण पर उनका बल आज भी युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है। सामाजिक समरसता, समावेशी विकास और मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए उनका संदेश—मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है—समकालीन भारत और विश्व दोनों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

IX. निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि स्वामी विवेकानन्द का जाति-प्रथा, छुआछूत और पाखण्ड के प्रति विरोध केवल सामाजिक सुधार का प्रयास नहीं था, बल्कि वह गहन दार्शनिक आधार पर निर्मित एक व्यापक मानवीय आंदोलन था। उन्होंने अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त — “सर्वं खल्विदं ब्रह्म”, “अहं ब्रह्मास्मि” — को सामाजिक व्यवहार का आधार बनाते हुए यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक मनुष्य में समान दिव्यता निहित है; अतः किसी भी प्रकार का जातिगत, सामाजिक या धार्मिक भेदभाव आध्यात्मिक अज्ञान और नैतिक पतन का सूचक है। उनके चिंतन में धर्म का वास्तविक स्वरूप बाह्य कर्मकाण्ड, रूढ़ि या संकीर्ण पहचान में नहीं, बल्कि आत्मानुभूति, करुणा, सेवा और चरित्र-निर्माण में निहित है।

जाति-प्रथा के संदर्भ में उन्होंने उसके मूल गुण-कर्म आधारित स्वरूप और बाद में उत्पन्न जन्म-आधारित कठोरता के बीच स्पष्ट भेद किया तथा सामाजिक गतिशीलता, शिक्षा और आत्मसम्मान को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया। छुआछूत को उन्होंने राष्ट्रीय दुर्बलता और अधर्म घोषित करते हुए समाज के उपेक्षित वर्गों के उत्थान को राष्ट्र-निर्माण की अनिवार्य शर्त माना। “दरिद्र नारायण” की संकल्पना के माध्यम से उन्होंने सेवा को साधना का रूप प्रदान किया और यह सिद्ध किया कि मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा है। पाखण्ड और अंधविश्वास के विरुद्ध उनका दृष्टिकोण तर्कशील, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित था; उन्होंने धर्म को निर्भकता, स्वतंत्र चिंतन और नैतिक शक्ति का स्रोत माना।

समग्रतः विवेकानन्द का चिंतन आध्यात्मिक एकता और सामाजिक समता के समन्वय का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। उन्होंने भारतीय समाज को उसके मूल वेदान्तीय आदर्शों की ओर लौटने का आह्वान किया, किंतु साथ ही आधुनिक युग की आवश्यकताओं—शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक न्याय—को भी स्वीकार किया। आज के समय में, जब समाज अनेक प्रकार की असमानताओं, पहचान-आधारित संघर्षों और वैचारिक ध्रुवीकरण से जूझ रहा है, तब उनका संदेश पुनः स्मरणीय है कि राष्ट्र की शक्ति उसके प्रत्येक नागरिक की गरिमा और उन्नति में निहित है। इस प्रकार, स्वामी विवेकानन्द का जाति-भेद, छुआछूत और पाखण्ड के विरुद्ध चिंतन न केवल ऐतिहासिक महत्व का विषय है, बल्कि समकालीन सामाजिक समरसता और मानवीय एकता की स्थापना के लिए भी स्थायी प्रेरणा और मार्गदर्शन प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

- [1] विवेकानन्द, स्वामी. *विवेकानन्द साहित्य*, खंड 1. कोलकाता: रामकृष्ण मठ, 2018 संस्करण।
- [2] विवेकानन्द, स्वामी. *शिकागो भाषण तथा अन्य व्याख्यान*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 2019 संस्करण।
- [3] विवेकानन्द, स्वामी. *प्राच्य और पाश्चात्य*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 2017 संस्करण।
- [4] विवेकानन्द, स्वामी. *कर्मयोग*. कोलकाता: रामकृष्ण मठ, 2020 संस्करण।
- [5] विवेकानन्द, स्वामी. *राजयोग*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 2016 संस्करण।
- [6] रामकृष्ण मठ. *स्वामी विवेकानन्द के सामाजिक और धार्मिक विचार*. कोलकाता: रामकृष्ण मठ प्रकाशन, 2021।
- [7] अद्वैत आश्रम. *वेदान्त और आधुनिक समाज : विवेकानन्दीय दृष्टि*. कोलकाता, 2022।
- [8] शर्मा, रामनाथ. *भारतीय सामाजिक चिंतन और स्वामी विवेकानन्द*. नई दिल्ली: भारतीय विद्या प्रकाशन, 2019।
- [9] सिंह, अनिल कुमार. “स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक दर्शन और समकालीन प्रासंगिकता।” *भारतीय दर्शन शोध पत्रिका*, 2020।
- [10] मिश्रा, सुनील. “जाति-प्रथा पर स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण।” *समाज विज्ञान समीक्षा*, 2023।

International Journal of Advanced Research in Education and Technology

ISSN: 2394-2975

Impact Factor: 8.152